॥ श्रीः ॥

श्रीमदमृतग्रन्थमालायाश्चतुर्दशं पुष्पम्

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-महामहिम-श्रीमद्-

अमृतवाग्भवाचार्येण

दृष्टः

सिद्धमहामन्त्रः

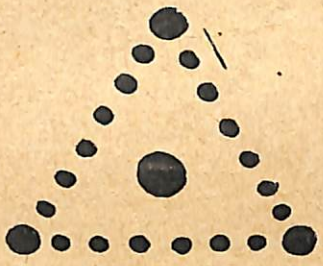

व्याख्याता — डा० बलजिन्नाथपण्डितः

विद्वद्वरकलास्थानं श्रीपीठं पण्डितप्रियम् ।
अमृतं वाग्भवं भूयात् पुरुषार्थप्रसिद्धये ॥

श्रीपीठ सैद्धदर्शनशोध-संस्थान, जम्मू ।

मूल्य : रुपये १-५०

स्तोत्रकार

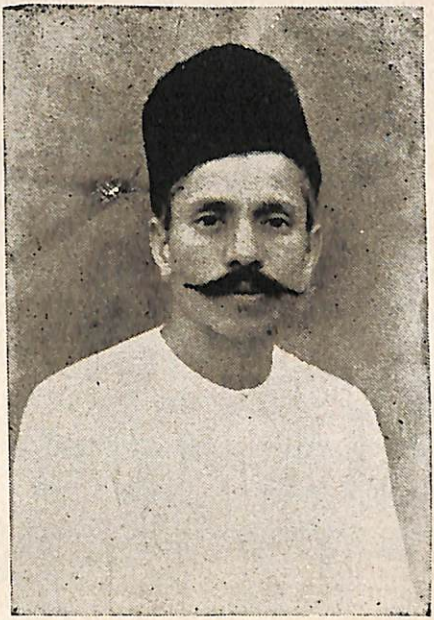

ग्रन्थकार महोदय :—

सर्वतन्त्र—स्वतन्त्र-महामहिम-श्रीमद्-

आचार्य अमृतवाग्भव जी महाराज ।

चित्र सं० १९९३ विक्रमी का ।

उपोद्घात

संवत् १९९० (ई० १९३३) में पूज्यपाद आचार्य श्रीमद् अमृतवाग्भव जी जब नालागढ़ (हि० प्र०) में वहां के धर्म-सभा-भवन में एक कमरे में कुछ सयय से ठहरे हुए थे तो एक दिन प्रातःकालीन नित्यकर्म के अनन्तर ही उनकी वाणी में एक संस्कृत श्लोक अकस्मात् ही विना किसी संकल्प या यत्न के ऐसे ही स्फुरित हुआ तो उसे प्रसन्नता-पूर्वक उन्होंने कागज़ पर लिख दिया।

श्लोक यह है—

प्रभो शम्भो दीनं विहितशरणं त्वच्चरणयोर्
भवारण्यादस्माद् विषम-विषयाशीविष-वृतात्।
समुद्धृत्य श्रद्धाविधुरमपि बद्धादरकरं
दयादृष्ट्या पश्यन् निजतनयमात्मीकुरु शिव॥

जब फिर वे घूमघाम कर भोजन करके पुनः कमरे में

बैठे तो उस कागज़ को लेकर के श्लोक को फिर पढ़ लिया। उस समय वैयाकरण होने के नाते उन्हें श्लोक को पढ़ते पढ़ते ऐसा प्रतीत हुआ कि उसमें एक तीन पदों वाला समास व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है। वह समस्त पद है "बद्धादरकरम्"। इस पद को वे "निजतनयं(मां)" इस शब्द का विशेषण समझते रहे और अर्थ उन्हों ने यह लगाया कि "आदरपूर्वक जिसने हाथ जोड़े हैं उस प्रकार के अपने इस पुत्र रूपी मुझ को"। उनके विचार में यहां व्याकरण के नियमों के अमुसार "आदर-बद्ध-करम्", ऐसा समास होना चाहिए था। परन्तु वैसा करने पर शिखरिणी नामक छन्द यहां टूट जाता। तो पूज्यपाद जी ने यह निश्चय किया कि ज़रा सोच करके इस समस्तपद को हटाकर इसके स्थान पर किन्हीं और शब्दों को जोड़ लें जो व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हों, जिनसे छन्द में कोई भङ्ग न पड़े और जो श्लोक के अन्य शब्दों के साथ भी अर्थ के अंश में पूरा मेल खाएं। ऐसा सोच कर उन्होंने श्लोक को वैसे ही रख छोड़ा। उसी समय शब्दों को नहीं बदला।

आगे उसी दिन एक अतिविचित्र घटना इस तरह से घटी—सायङ्काल के नित्यकृत्य के पूरा हो चुकने पर पूज्यपाद जी के मन में ज्यों ही श्लोक के शब्दों में परिवर्तन करने का विचार आया, त्यों ही कमरे में एक तेजस्वी दिव्य महापुरुष प्रकट हो गए। उन्होंने दाएं हाथ की तर्जनी को खड़ा करके गरजते हुए स्वर से वात्सल्य भरे भाव से कहा, "यह श्लोक सर्वथा शुद्ध है। इसमें किसी भी प्रकार का कोई भी परिवर्तन

नहीं करना चाहिए"। जब पूज्यपाद जी ने ऊपरोक्त अशुद्धि की शङ्का प्रस्तुत करदी तो बोले कि उस समस्तपद को "निजतनयं" पद का विशेषण न मानते हुए "विहित-शरणं" पद से सूचित होने वाली शरणागति की क्रिया के विशेषण के रूप में वाक्य में जोड़ लो तो कोई भी अशुद्धि की शङ्का शेष नहीं रहेगी। फिर उस पद की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार से करते हुए सुना दी, "बद्धादरौ करौ यस्मिन् कर्मणि यथा स्यातां तथा"। तात्पर्य उस व्याख्या से ऐसा निकलता है, "आदर पूर्वक हाथों को जोड़ कर शरण में आए हुए अपने इस पुत्र को"। ज्योंही ऐसे व्याकरण शास्त्र के अनुकूल समाधान से पूज्यपाद जी के मस्तिष्क से अशुद्धि की शङ्का दूर हो गई, त्योंही वे दिव्य महात्मा एक बार पुनः वात्सल्यभाव को टपकाने वाली दृष्टि से पूज्यपाद जी की ओर देखते हुए क्षणों में ही अदृश्य हो गए।

पूज्यपाद श्री आचार्य जी ने दर्शन-विद्या, साधना, आदि का प्रतिपादन करने वाले अपने 'सिद्धमहारहस्यम्" नामक ग्रन्थ के सातवें आह्निक के अङ्क ३२ से ३५ तक के श्लोकों में इस घटना का वर्णन किया है। फिर उन्होंने "श्रीपरशिव-प्रार्थना" नामक लघुपुस्तिका में इस सारी घटना को विस्तार से लिखा है। इन पंक्तियों के लेखक को उन्होंने यह घटना और भी विस्तार से स्वयं सुना दी है। तदनुसार ही वर्तमान पुस्तिका को लिखा जा रहा है। पाठकों को

चाहिए कि श्रीसिद्धमहारहस्यम् और श्रीपरशिवप्रार्थना को भी पढ़ें ।

इस ऊपरोक्त घटना से पूज्यपाद जी को दो तीन बातों के विषय में निश्चय हो गया। एक तो वे इस निर्णय पर पहुंचे कि यह "प्रभो शम्भो" श्लोक उनकी अपनी रचना नहीं है। यह रचना तो पारमेश्वरी अन्तः प्रेरणा से ही उनके मस्तिष्क में प्रकट हो गई और उनकी वाणी से बाहिर अभिव्यक्त हो गई। दूसरे वे अपने आपको इस श्लोकात्मक महामन्त्र का ऋषि ही समझने लगे निर्माता नहीं । तीसरे उन्हें इस बात का निश्चय हो गया कि यह श्लोक कोई साधारण स्तोत्र न होकर एक दिव्य महामन्त्र है जिसके अभ्यास से सांसारिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक फलों की प्राप्ति हो सकती है।

तब से इस श्लोकमयी महामन्त्र की सहस्त्रों प्रतियां अनुवाद सहित अनेकों बार प्रकाशित हुईं । बहुत पहले इसका प्रकाशन कल्याण पत्रिका में और फिर श्रीस्वाध्याय पत्रिका में हुआ। इस के सानुवाद पृथक् संस्करण भी कई बार प्रकाशित हुए। पूज्यपाद जी के अनेकों ही ग्रन्थों में भी यह महामन्त्र प्रकाशित होता आया । इसके अभ्यास से अनेकों ही भक्तों के अनेकों प्रयोजन सिद्ध होते आए हैं । अनेकों सज्जन इसका निरन्तर पाठ या जप करते आए हैं और अब भी कर रहे हैं।

उस दिव्य महापुरुष के शरीर की आकृति, वेष-भूषा और

कायमुद्रा का जो वर्णन पूज्यपाद जी ने नालागढ़ में अपने शिष्यों को सुनाया, उसी वर्णन के अनुसार वहां के एक चित्रकार ने उनका एक चित्र खींच लिया जो अभी भी वहां धर्मसभा के भवन में विद्यमान है। श्री पूज्यपाद जी के कहने के अनुसार तो चित्र आकार प्रकार में यथार्थ है परन्तु मुख, नेत्र आदि अङ्गों की बिशेष आकृति में पूरी तरह से उनसे मिलता नहीं है। फिर भी उस चित्र को इस पुस्तिका में स्थान दिया जा रहा है।

महामन्त्रः

प्रभो शम्भो दीनं विहित-शरणं त्वच्चरणयोर्
भवारण्यादस्माद् विषम-विषयाशीविष-वृतात् ।
समुद्धृत्य श्रद्धा-विधुरमपि बद्धादरकरं
दयादृष्टचा पश्यन् निजतनयमात्मीकुरु शिव ।।

अन्वयः—प्रभो, शम्भो, शिव, दीनं, श्रद्धाविधुरमपि बद्धादरकरं त्वच्चरणयोर्विहितशरणं, निजतनयं (मां) दया-दृष्ट्या पश्यन् विषमविषयाशीविषवृताद् अस्माद् भवारयात् समुद्धृत्य आत्मीकुरु।

पदार्थः=हे **प्रभो**—सर्वेश्वर **शम्भो**—परिपूर्ण कल्याण के

मूल स्रोत **शिव**—सर्वोत्कृष्ट मङ्गल स्वरूप भगवान् शिव, **दीनं**--दीन बने हुए तथा **श्रद्धाविधुरमपि**—श्रद्धा के अत्यन्त स्वल्प और बलहीन होने पर भी **बद्धादरकरं**—आदर पूर्वक हाथों को जोड़े हुए **त्वच्चरणयोः**—आपके चरणयुगल में **विहित-शरणं**—शरणागतिभाव से आश्रय लिए हुए **निजतनयं**—अपने इस पुत्रको, अर्थात् मुझको **दयादृष्ट्या**—दयाभरी दृष्टि से **पश्यन्** देखते हुए, **विषम-विषयाशी-विष-वृतात्**—इन्द्रियविषय रूपी अतिभयानक (विषम) ज़हरीले सापों से ढके हुए अर्थात् भरे हुए (आशीविषवृतात्) इस **भवारण्यात्**—संसार रूपी घने वन में से **समुद्धृत्य**—उभार कर, अर्थात् इस गहन वन में से मेरा उद्धार करके (मुझे पुनः) **आत्मीकुरु**—अपना लीजिए, अर्थात् मुझे अपने साथ अभेदभाव की स्थिति पर ले आइए।

वाक्यार्थ—हे जगत के एकमात्र सर्वातिशायी परमेश्वर तथा कल्याणकारी और उत्कृष्टतम कल्याणस्वरूप भगवान् शिव, मैं बहुत दीन बना हूं, फिर श्रद्धा में बहुत सारी त्रुटि के होते हुए भी आदरपूर्वक हाथों को जोड़ कर (मैं) आपके चरणों की शरण में आ गया हूं, तो आप कृपादृष्टि से (इस अपने पुत्र रूपी मुझ को) देखते हुए इन विषय रूपी अतीव भयङ्कर विषधर सर्पों से भरे हुए इस संसार रूपी गहन वन में से (मेरा) उद्धार करके इस अपने पुत्ररूपी मुझको (पुनः)

मन्त्र के शब्दों को सर्वथा शुद्ध
घोषित करने वाले दिव्य महापुरुष

अपना लीजिए। अर्थात् मुझे अपने साथ अभेदभाव की स्थिति पर पहुंचा दीजिए।

उस दिव्य महापुरुष का वर्णन पूज्यपाद जी ने अपने सिद्ध-महा-रहस्यम् के सातवें आह्निक में इस प्रकार से किया हैं—

लम्बकूर्चं तडिन्नेत्रं घनरोमकचाचितम् ।
उत्तर्जनीकं गर्जन्तं वात्सल्यान्वितमानसम् ॥१॥

मन्निर्मितः "प्रभो शम्भो" श्लोको यत्सदयेच्छया ।
इष्टसिद्ध्यै प्राप सिद्धमहामन्त्रस्वरूपताम् ॥२॥

अज्ञातनामधामानं वन्देऽहं दिव्यपूरुषम् ।
श्रद्धया परया नित्यं तमपि प्राप्तगौरवम् ॥३॥

मेरे द्वारा निर्मित "प्रभो शम्भो" इत्यादि श्लोक जिस दिव्य पुरुष की करुणापूर्ण इच्छा से इष्टसिद्धि के लिए एक सिद्ध महा मन्त्र बन गया उस लम्बी दाढ़ी वाले बिजली के समान नेत्रों वाले, घने बालों और रोमों से भरे हुए, तर्जनी को ऊपर उठा उठा कर गरजते हुए, वात्सल्य से युक्त हृदय वाले मुझ से न जाने हुए नाम और स्थान वाले और गुरुरूपता को प्राप्त दिव्यपुरुष को मैं परम श्रद्धा से सदा प्रणाम करता हूं।

खनन्दनन्देन्दुमिते वैक्रमे मासि माधवे ।
नालागढे धर्मसभाभवने घटितं त्वदम् ॥४॥

यह घटना विक्रम संवत् १९९० में वैशाख के महीने में, नालागढ़ में, धर्म-सभा के भवन में घटी।

उस दिव्य महापुरुष के विषयमें किए गए इस वर्णन पर विचार करते हुए और कुछ कुछ मिलते जुलते बनावटी चित्र को देखते हुए उपासक गण उस महापुरुष की वास्तविक आकृति की स्वयं कल्पना कर सकते हैं।

— — —·—

श्रीपीठ सद्धदर्शन शोध संस्थान के प्रकाशन

संख्या	ग्रन्थ	विशेषता	सन्	मूल्य
१.	आत्मविलासः सुन्दरी-शब्द-कोष-टिप्पनी-सहितः द्वितीयं-संस्करणम्		१९८२	२५-००
२.	श्रीगुरुवरस्तवः	सानुवादः	१९८३	३-०
३.	श्रीसिद्धमहारहस्यम्	हिन्दी टीका सहितम्	१९८३	१०-००
४.	श्री देशिकदर्शनम्	हिन्दी अनु. सहितम्	दोनों एक जिल्द में	
५.	परमशिवस्तोत्रम्	हिन्दी टीका सहितम्	१९८४	१३-००
६.	वस्तुस्थितिप्रकाश		दोनों एक जिल्द में	
७	महानुभवशक्ति-स्तवः	सुविस्तृत हिन्दी टीका-सहितः	१९८५	८-००
८.	सिद्धमहामन्त्रः	हिन्दी टीका सहितः	१९८६	१-५०

श्रीपीठ के अन्यत्र प्रकाशित ग्रन्थ

संख्या	ग्रन्थ	विशेषता	सन्	प्रकाशन-स्थान	मूल्य
१.	अमृतसूक्ति-पञ्चाशिका	सस्कृतटीका	१९७३	पूर्ण	१०-००
२.	मन्दाक्रान्तास्तोत्रम्	हिन्दी अनु०	१९७९	दिल्ली	५-००
३.	अमृतस्तोत्रसंग्रहः	,, ,,	१९८३	,,	३-००
४.	अमृतवाङ्मयपरिचायिका	,, ,,	१९८६	,,	२-००
५.	आत्मविलासविमर्शिनी (ग्रन्थ की विस्तृत व्याख्या)	संस्कृत में यन्त्रस्थ		जम्मू	.....

— — —